## 1850-1900 के दौरान भारत में शिक्षा

# पाठशाला, शिक्षक और शिक्षा की चाहत

**प्रस्तुति - माधव केलकर**

उन्नीसवीं सदी के पहले पचास साल भारत के इतिहास में काफी घटना प्रधान रहे। उस सदी के शुरुआती दशकों में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने हिन्दोस्ताँ के काफी बड़े इलाके पर कब्ज़ा कर लिया था। जिस तरह भारत के सियासती नक्शे पर स्वतंत्र, पराजित, सन्धि में बँधे इलाके थे उसी तरह यहाँ के शैक्षणिक मानचित्र में भी काफी विविधता थी।

इस सदी में भारत में शिक्षा के बदलावों पर एक नज़र डालते हैं। ईस्ट इंडिया कम्पनी अभी भी ब्रिटिश संसद द्वारा जारी बीस सालाना अनुमति पत्र (चॉर्टर एक्ट) के आधार पर भारत में व्यापार कर रही थी। कम्पनी भारत में अपने हितों को साधने हेतु शिक्षा के लिए कुछ करना चाहती है, इसकी झलक सन् 1813 के चॉर्टर एक्ट से ही मिलना शुरू हो जाती है। इस एक्ट में कम्पनी को हर साल एक लाख रुपए भारत में शिक्षा के विकास में लगाने के निर्देश दिए गए थे। तब तक भारत में मोटे तौर पर तीन तरह के शैक्षणिक संस्थान पहचाने जा सकते थे। पहला, काफी हद तक असंगठित देशज शिक्षा वाले स्कूल। दूसरे, मिशनरियों द्वारा खोले गए स्कूल और तीसरे, शासकीय प्रयास से चलने वाली शालाएँ।

1835 में लॉर्ड मैकॉले ने भारत में शिक्षा को लेकर ब्रिटिश नीतियों को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया और तभी से भारत में शिक्षा का एक ढाँचा खड़ा करने की कोशिश भी तेज़ हो गई। 1854 में चार्ल्स वुड ने भारत में शिक्षा की समीक्षा करते हुए पब्लिक एजुकेशन के विस्तार के लिए कुछ अनुशंसाएँ की थीं जिनमें से प्रमुख थीं - हरेक प्रान्त में शिक्षा विभाग

का सृजन करना, लंदन विश्वविद्यालय की तर्ज पर बम्बई, मद्रास, कलकत्ता में विश्वविद्यालयों की स्थापना, हर ज़िले में कम-से-कम एक सरकारी विद्यालय खोला जाए, मान्यता प्राप्त शालाओं को अनुदान देना और शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए।

आगे चलकर भारतीय शिक्षा कमीशन (1882) ने भारत में शिक्षा की समीक्षा करके स्कूलों में दलितों के प्रवेश की अनुशंसा की। कुल मिलाकर इन सब का ज़िक्र यहाँ इसलिए किया जा रहा है ताकि आपको 19वीं सदी में भारतीय शिक्षा में हो रही गतिविधियों का अन्दाज़ लग सके। जैसा कि पहले भी कहा गया है कि उस समय के शैक्षणिक मानचित्र में वैविध्य था। इसी विविधता को दिखाने के लिए यहाँ पाँच उदाहरण दिए जा रहे हैं। कालखण्ड के लिहाज़ से ये 1850 के बाद के हैं और सभी का सम्बन्ध प्राथमिक शिक्षा से है। इन उदाहरणों में एक तमिलनाडु से, दूसरा सेंट्रल प्रोविन्सेस से, तीसरा भोपाल रियासत से, चौथा बंगाल और पाँचवाँ बम्बई प्रेसीडेन्सी से है। हरेक उदाहरण के बाद कुछ सवाल पूछे गए हैं ताकि कुछ अन्य पहलुओं पर भी सोच-विचार हो सके।

## I

### तिण्णै शाला - एक पारम्परिक शिक्षा व्यवस्था का वर्णन

सबसे पहले सामिनाथ अय्यर (जन्म फरवरी 1855) की आत्मकथा को देखते हैं। सामिनाथ ने आत्मकथा में अपने परिवार के बारे में, अपने पुरखों के बारे भी लिखा है। आत्म कथ्य में एक पाठ सामिनाथ की बचपन की शिक्षा को लेकर भी है। तंजावूर के एक गांव में सामिनाथ की शुरुआती पढ़ाई हुई थी। इस शाला के बारे में देखते हैं सामिनाथ क्या कहते हैं।

"...पहले उत्तमदानपुरम् में मेरे शिक्षक हुए थे नारायण अय्यर जो कि लगभग पैंतीस वर्ष के थे। अच्छी काया के थे। उन्हें देखते ही मेरे और अन्य लड़कों के मन में भय उत्पन्न हो जाता था। छड़ी का उपयोग कुछ ज़्यादा ही करते थे। जब भी मैं उनका स्मरण करता हूँ तो उनकी छड़ी की मार ही याद आती है।

उनकी पाठशाला में अग्रहार (ब्राह्मण) मुहल्ले और किसानों के मुहल्ले के लड़के पढ़ते थे। छड़ी से मारने के काम में वे कोई पक्षपात नहीं करते थे। एक लड़का था - पिच्चू। उसके पिता बहुत धनी थे। इस कारण वह थोड़ा घमण्डी और निडर भी था। जब गुरुजी मारते थे तो वह उन्हें उल्टा

मारने का प्रयास करता था। मारपीट से बच्चों को काबू में रखना कठिन है यह बात गुरुजी समझते नहीं थे। जब सब बच्चे दण्ड को स्वीकार करते थे, पिच्चू ही क्यों स्वीकार नहीं करता है। वे उसे और कठोर दण्ड देने लगे। फिर उसे शाला से ही निकाल दिया। कई बच्चे यही सोचते थे कि उसे जैसी मुक्ति मिली वो हमें कब मिलेगी।

शाला से निकलने के बाद पिच्चू ने पढ़ाई के बारे में दुबारा सोचा ही नहीं। बाद में वह सिर्फ हस्ताक्षर कर सकता था, और कुछ पढ़-लिख नहीं सकता था। धनवान पिच्चू अय्यर पढ़े या न पढ़े, क्या फर्क पड़ता है।

नारायण अय्यर ने बारहखड़ी, गिनती आदि ही सिखाई। उनसे सीखने के बाद मैं सामिनाथ अय्यर की शाला में दाखिल हुआ। उस ज़माने में कागज़ शाला तक नहीं पहुँचा था। स्लेट पट्टी भी नहीं होती थी। पहले छात्र रेत पर ही लिखना सीखते थे। फिर कील की मदद से ताड़पत्र पर लिखना उन्हें खुद से सीखना होता था।

सामिनाथ अय्यर संगीत और संस्कृत के ज्ञाता थे। उन्होंने मुझे संक्षेप में रामायण, विष्णु सहस्रनाम, नीतिसार, अमरकोश के तीन खण्ड सिखाए। वे सब मुझे याद थे। तमिल और गणित भी सिखाते थे। वे नारायण अय्यर जैसे कठोर नहीं थे। फिर भी उस गाँव के शिक्षकों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी विश्वास था कि बिना छड़ी के बच्चे सीख नहीं सकते हैं। वे भी इसे मानते थे।

गाँव की शालाओं को तिण्णै शाला भी कहते थे (तिण्णै यानी घर के बाहर बरामदे में बनी बैठक)। वहाँ बच्चों का सीखने का तरीका अनोखा था। आज 1940 में उसे कहीं नहीं देख सकते।

सभी लड़कों को सुबह पाँच बजे उठकर पाण्डुलिपि झोले के साथ शाला पहुँचना होता था। पाण्डुलिपि झोला - ताड़पत्र पुस्तकों को बाँधकर उठाने वाली रस्सी का झोला होता था। वह छीका जैसा होता था। उसे शाला में एक जगह लटकाकर लड़के बारी-बारी से पिछले दिन के पाठों को याददाश्त से दोहराते थे। इसे बारी-बारी बोलना कहते थे। तब शिक्षक घर के अन्दर लेटे होते थे या अन्य कुछ करते होते थे। शिक्षक के आने की प्रतीक्षा किए बिना लड़कों को बोलना होता था। वे अन्दर से सुनते रहते थे। ज़्यादातर तिण्णै शालाएँ शिक्षक के घर के तिण्णै में ही लगती थीं।

छह बजे के बाद सारे लड़के नहर या तालाब आदि में जाकर दाँत साफ करते थे और अपने-अपने कुल के अनुरूप तिलक लगाकर प्रातःकाल के अनुष्ठान करते थे। फिर कपड़ों में रेत बाँधकर कुछ श्लोक बोलते हुए शाला जाते थे। पुरानी रेत हटाकर नई रेत फैलाते थे। लिखने वाले उस पर लिखते थे। बाकी अपने पाठ पढ़ते थे।

नौ बजे लड़के बासी चावल खाते थे। तब शिक्षक एक तरफ बैठकर हर लड़के के हाथ में छड़ी से मारकर

चावल खाने भेजते थे। बासी चावल में खोकर लड़के शाला को न भुला दें शायद इसलिए वे ऐसा करते थे।

लड़कों में जो सबसे तेज़ और बलवान हो उसे मॉनीटर नियुक्त करते थे। यह ज़रूरी नहीं था कि वह पढ़ाई में तेज़ हो लेकिन बलवान होना ज़रूरी था। शिक्षक की अनुपस्थिति में लड़कों पर नियंत्रण रखना और रटे पाठ सुनना, उसके काम थे। सबको उसकी बात माननी पड़ती थी। कुछ लड़के उसके प्रिय पकवान देकर उसे अपने पक्ष में और उसके माध्यम से गुरुजी को भी अपनी तरफ करते थे। कभी-कभी गुरुजी से मॉनीटर कुछ ज़्यादा कठोर होते थे। छात्रों में पुराने छात्र नए छात्रों को पढ़ाते थे।

बारह बजे के बाद दोपहर के खाने के लिए लड़के घर जाते थे। और तीन बजे फिर पढ़ाई शुरू होती थी। शाम सात बजे तक अकसर शाला चलती थी।

रेत ही स्लेट पट्टी की जगह काम आती थी। ताड़पत्र ही पुस्तक थी और कील ही पेन था। गुरुजी एक पत्ते पर अ आ इ ई .... लिखकर देते थे जिससे छात्र सीखता था। फिर गिनती। ताड़पत्र तैयार करने, उसे जमाने और अच्छे से लिखना सीखने में कई दिन लग जाते थे। ताड़पत्र से बनी पुस्तक को खोलकर बाँधना भी खासा मुश्किल काम होता था।

जब कोई छात्र कोई नई पुस्तक पढ़ना शुरू करता था तो उसे 'पाण्डुलिपि शुरुआत' कहते थे। ताड़पत्र में उस पुस्तक को लिखकर हल्दी-कुमकुम लगाकर गणेश पूजा करके शिक्षक छात्र को देकर पढ़वाते थे। उसके घर से धान की लाई प्रसाद के रूप में बाँटी जाती थी। उस लाई में नारियल, तिल, गुड़ आदि मिला होता था और काफी स्वादिष्ट होता था। उस दिन शाला की छुट्टी होती थी।

'पाण्डुलिपि शुरुआत' पर छात्रों में बड़ा उत्साह होता था, नई पुस्तक पढ़ने के कारण नहीं, बल्कि लाई-प्रसाद और छुट्टी के कारण। पूर्णिमा, अमावस्या, प्रथमा, अष्टमी आदि दिनों में शाला नहीं लगती थी।

हर लड़का रोज़ गुरुजी के लिए कुछ-न-कुछ सामान लाकर देता था। जलाऊ लकड़ी, कण्डे, सब्ज़ी, फल आदि दिए जाते थे। खास त्यौहारों के मौकों पर त्यौहार सम्बन्धी चीज़ें दी जाती थीं। छुट्टी के दिनों में कुछ पैसे भी दिए जाते थे।

शिक्षक को हर छात्र प्रतिमाह चार आने फीस देता था। धनी लोग सालाना धान देते थे। खास मौकों पर शिक्षक का सम्मान भी करते थे। नवरात्री के समय शिक्षक की विशेष आमदनी होती थी। उन दिनों लड़के सज-सँवर कर आते थे और गाने गाते थे। खास गाने गाते हुए डांडियानुमा नाच करते थे। गुरुजी बच्चों को घर-घर ले जाते थे और उनसे गवाते थे। लोग भी यथाशक्ति गुरुजी को पैसे देते थे। उस पूरे पैसे को गुरुजी अपने पास

रखते थे। इसी से उनके घर के खास खर्चे जैसे शादी वगैरह हो पाती थी।

गाँव के लोग शिक्षक से बहुत आदर से पेश आते थे। वे लड़कों के साथ कुछ भी करें कोई उससे दुखी नहीं होता था, न उनसे इस बारे में कोई पूछताछ करता। घर में जो बच्चे शरारत करते थे उन्हें गुरुजी का नाम लेकर नियंत्रित किया जाता। पूरी बाल्यावस्था लड़कों को शिक्षकों के अधीन रहना पड़ता था। उन्हें भगवान की तरह देखना और ज़रूरत पड़ने पर उनके घर के काम करना आम बात थी।

शाला में जो दण्ड दिए जाते थे वे बहुत ही कठोर थे। कुछ मौकों पर छात्र को छत पर रस्सी बाँधकर उसे पकड़कर लटकना पड़ता था और उस समय शिक्षक पाँव पर मारते भी थे। मैंने भी एक बार इस दण्ड को सहा है। जिस लड़के ने पाठ ठीक से नहीं याद किया है, उसे अच्छे से पाठ याद करने वाले को अपनी पीठ पर बैठाकर घुमाना पड़ता था। इसे घोड़े की सवारी कहते थे। एक बार मैं भी ऐसी सवारी कर चुका हूँ।

आजकल ऐसे छात्रों के मन में भय उत्पन्न करके पढ़ाने वाले तरीके की हर तरफ से निन्दा की जाती है। उस ज़माने में ज़्यादातर तिण्णै शालाओं में इसी तरह से शिक्षण होता था। पिटाई के डर से लड़का पढ़ता था और चीज़ें याद करता था।

जब कागज़ पुस्तक आदि उपयोग में नहीं थे तब बच्चों की याददाश्त को पुख्ता करने तथा ज़रूरी बातें याद करवाने के लिए शिक्षक काफी परिश्रम करते थे। व्यक्ति अपने जीवन के लिए ज़रूरी बातों को बाल्यावस्था में, शाला से ही कण्ठस्थ कर लेता था। तरह-तरह के पहाड़े जो बाद में व्यापार में काम आते थे, याद किए जाते थे। सभी कुछ मनगणित ही होता था। उस ज़माने में 'प्रभावती' नामक एक पुस्तक पढ़ाई जाती थी जिसमें पंचांग सम्बन्धित जानकारी, 14 लोक, चक्र-वर्त्तियों के नाम, मनुओं के नाम, द्वीपों के नाम आदि होते थे। उसे याद करने वाला छात्र कई बातें शिक्षकों की मदद के बिना ही समझ पाता था।..."

**कुछ सवालः**

1. क्या तिण्णै शाला गाँव के सभी बच्चों के लिए उपलब्ध थी? या कुछ खास जातियों-समुदायों के बच्चे ही इस शाला में जा सकते थे?
2. क्या लड़कियों के लिए भी तिण्णै शाला होती होंगी?
3. शिक्षक के जीवन यापन की क्या व्यवस्था की गई थी?
4. विविध गाँवों में चल रही तिण्णै शालाओं में क्या शिक्षक एक जैसे तरीके से पढ़ाते होंगे? आपके विचार से इन शिक्षकों ने पढ़ाना कहाँ से सीखा होगा?
5. देशज शिक्षा प्रणाली के बारे में निम्न में से किन कथनों से आप

सहमत हैं?

– देशी स्कूल आम तौर पर एक शिक्षक वाली संस्थाएँ थीं।
– अध्यापक छात्रों से थोड़ी-सी फीस या ग्रामीणों द्वारा समय-समय पर दी जाने वाली सहायता के सहारे जीवनयापन करते थे।
– बाहर से नियंत्रण करने वाली कोई अफसरशाही नहीं थी।
– समान परीक्षा व्यवस्था नहीं थी।
– ऐसा लगता है कि शिक्षक पढ़ाई की खास परम्पराओं और तरीकों का पालन करते थे, जिसमें एक स्थान से दूसरे में बहुत कम अन्तर हुआ करता था। लेकिन शिक्षकों की क्षमता पर आधारित स्तर में फर्क पड़ जाता था।

## II

## एक ग्रामीण शाला के निरीक्षण की रिपोर्ट - 1897

*सेंट्रल प्रोविन्सेस के एक प्रमुख शहर जबलपुर से लगभग 19 कि.मी. की दूरी पर स्थित बरेला गाँव के स्कूल के निरीक्षण के लिए एक दल वहाँ गया। इस जाँच दल द्वारा दी गई रिपोर्ट - रूरल स्कूल इन सेंट्रल प्रोविन्स - एच. शार्प, स्कूल इंस्पेक्टर, सेंट्रल प्रोविन्स, के कुछ चुनिन्दा अंश सम्पादित करके यहाँ दिए जा रहे हैं।*

....स्कूल निरीक्षण के लिए हमारे आने की अपेक्षा गाँव और स्कूल के स्टाफ को पहले से थी। हमने पाया कि स्कूल से मील भर पहले, एक जन समूह हमारे स्वागत हेतु प्रतीक्षा कर रहा था। इस समूह में शाला समिति के लोग, गाँव के बड़े-बूढ़े, मालगुज़ार-ज़मींदार आदि शामिल थे।

रास्ते में हमारी मुलाकात गाँव के चौकीदार से हुई। शुरू में उसने शर्माकर जवाब दिए लेकिन उसने बताया कि यह स्कूल ज़िला समिति द्वारा संचालित है, इसमें लगभग 50 लड़के पढ़ते हैं, उपस्थिति अच्छी बनी रहती है, शिक्षक अच्छा व्यक्ति है, पिछले शिक्षक ने काफी नुकसान किया स्कूल का, मालगुज़ार काफी मदद करते हैं शाला की आदि। हमने चौकीदार से जानना चाहा कि क्या मालगुज़ार लड़कियों के लिए स्कूल नहीं चाहते? जबकि कुछ गाँव वालों की बेटियाँ होंगी, जिन्हें लिखना-पढ़ना आता होगा? चौकीदार ने कहा, नहीं हुज़ूर, लड़कियों को पढ़ना नहीं आता। हम लोग गरीब हैं, हमारी बेटियों को पिसाई, बुनाई, खाना पकाने की बजाय अनिवार्य रूप से पढ़ना आना चाहिए।

बातचीत करते हुए हम स्कूल तक पहुँच गए थे। पत्तियों के मेहराबनुमा तोरण, लाल कपड़े पर सुनहरे अक्षरों से लिखा वेलकम, विविध रंगों की झण्डियों से शाला की सजावट की गई थी।

जिस शाला का निरीक्षण करने हम आए हैं वह लड़कों के लिए है। इस ग्रामीण शाला में पाँच कक्षाएँ थीं। पहली नवागन्तुक बच्चों के लिए शिशु

कक्षा (नर्सरी कक्षा)। इसके बाद कक्षा एक, दो, तीन और चार। यहाँ प्राथमिक परीक्षा के साथ प्राथमिक शिक्षा का कोर्स खत्म होता है।

अब हम एक-एक करके विविध कक्षाओं में जाकर इस बात का मुआयना करने वाले हैं कि बच्चे क्या कर रहे हैं और वे क्या जानते हैं। सबसे पहले हम नर्सरी कक्षा में जाने वाले हैं क्योंकि यहाँ से उनकी स्कूली शिक्षा की शुरुआत हो रही है। जैसे ही हमने नर्सरी कक्षा में कदम रखा बच्चे अपनी-अपनी जगह पर खड़े हुए। कक्षा के मॉनीटर (शिक्षक का सहायक जिसने बाँह पर बैज लगाया था) के निर्देश पर हमारा अभिवादन किया। बच्चों की उम्र पाँच-छह साल की होगी। वे दूरदराज़ के गाँवों के लगते थे। उनके कपड़े भी साधारण थे। वे फर्श पर आधा गोला बनाए बैठे थे। उनके सामने वाली दीवार पर अक्षर कार्ड और विविध वस्तुएँ लटकी हुईं थीं। अक्षर कार्ड चार-पाँच इंच लम्बाई के थे और इन पर इमली के बीजों को चिपकाकर अक्षर लिखे गए थे। सफेद कार्डशीट पर चिपकाए ब्राउन बीज अपने उद्देश्य की पूर्ति करते हुए लग रहे थे। बीजों से अक्षरों के अलावा अंक, सामान्य आकृतियाँ और चौकोन, वृत्त आदि भी बनाए गए थे। हरेक बच्चे के पास ऐसे सौ एक बीज थे, जिनसे वे फर्श पर इन अक्षरों, अंक, आकृतियों को बनाकर इनके नाम सीख सकते हैं। अक्षरों-अंकों को पहचानने के लिए बच्चे पास रखी रेत की पट्टी पर अपनी अँगुली से लिखकर इनसे अपना परिचय बढ़ाते हैं। शुरुआती जोड़-घटा सीखने के लिए भी इमली के बीजों का इस्तेमाल करते थे। कक्षा में विविध वस्तुओं और प्राणियों के कार्ड भी थे। इसके अलावा मिट्टी या लाख से बने सामान्य फल, सब्ज़ियाँ मसलन - आम, अमरूद, सीताफल, तरबूज़, बैगन आदि भी थे। ये सब इसलिए थे कि इन गतिविधियों से बच्चे इन्हें पहचानने के अभ्यस्त हो सकें। इनके अलावा गीत, कहानी और खेल भी सिखाए जाते हैं। इन नन्हें बच्चों ने हमें बुन्देली में एक कहानी सुनाई - 'एक राजा हते और एक रानी हती.....' फिर किस तरह राजा नल पुष्कर के साथ जुआ खेलकर अपना राजपाट हारता है और अपनी रानी दमयन्ती के साथ निर्वासित हो जाता है।

इसके बाद एक नर्तक को गीत गाने के लिए बुलाया जाता है। वह काफी बहाने बनाकर गाने से मना करता है। आखिरकार, उसने काफी सजीवता से - 'सूरज निकला हुआ सबेरा' गीत गाना शुरू किया। कक्षा के सभी बच्चे भी सामूहिक रूप से इस गीत को गाने लगे।

बरामदे में लगी इस कक्षा से निकल कर अब हम भीतर की कक्षा में कदम रख रहे थे। वहाँ कक्षा दो, तीन और चार हमारा इन्तज़ार कर रही थी। कक्षा की दीवारों की सफेदी हो चुकी थी। दीवार पर कई तरह के नक्शे

लटके हुए थे जैसे - शाला का प्लान, गाँव का नक्शा, ज़िले का, सेंट्रल प्रोविन्सेस का, भारत का और दुनिया का नक्शा। इसी तरह दीवार पर ब्रिटिश राजपरिवार और वॉयसराय के चटक रंगों वाले चित्र भी थे। इसके अलावा छपा हुआ पाठ्यक्रम, शाला समिति के सदस्यों के नाम, मासिक विवरण आदि लिखा हुआ था। इन सबके ऊपर कुछ नीति वाक्य लिखे हुए थे। कक्षा में बच्चों के लिए बाँस की चटाई बिछी हुई थी। सबसे ऊपर कालीन बिछा था (कुछ मौकों पर कालीन उधार माँगकर लाया जाता है)। स्कूल के अपने फर्नीचर में समिति के सदस्यों या हम अतिथियों के बैठने के लिए कुर्सी-बैंच वगैरह थे।

एक चौखाने शेल्फ में एक मॉडल से यह दिखाया जा रहा था कि अलग-अलग घोल का पौधों पर क्या प्रभाव पड़ता है। इसी तरह दूसरे मॉडल में पौधे प्रकाश की मौजूदगी में किस तरह ऑक्सीजन देते हैं, हमारी साँस में कार्बन-डाइऑक्साइड और जल वाष्प की मौजूदगी को किस तरह मालूम किया जाए, दिखाया गया है। शेल्फ में मिट्टी की कटोरियों में स्थानीय गाँव की विविध मिट्टियों के नमूने रखे गए थे। यह सब शिक्षक ने ट्रेनिंग के दौरान सीखा था। टेबल पर एक ग्लोब भी रखा हुआ था।

हमने कक्षा चार के बच्चों को अपने पास बुलाया। हम यह देखना चाहते थे कि बच्चे क्या जानते हैं। बच्चों ने कक्षा चार की रीडर में से भारत का इतिहास, जुताई-सिंचाई के लिए मशविरा, पत्र लेखन, और हितोपदेश की कबूतर और उसके दोस्त चूहे की कहानी, या हिरण-कौवे-भेड़िए की कहानी से कुछ अंश पढ़कर सुनाए। इसमें कहानी को हाव-भाव से सुनाना और कथा का सूक्त वचन बताना सब कुछ शामिल था।

इसके बाद हमने बच्चों को दो-दो के जोड़े में याद की हुई कविता सुनाने के लिए कहा। उन्होंने इसे भी करके दिखाया।

कक्षा चार के बच्चे सामान्य तौर पर अच्छा लिख रहे थे, वे बोले गए शब्द, वाक्य भी लिख पा रहे थे। वे किताब में से देखकर लिखने और कल्पना आधारित खतों की रचना भी कर पा रहे थे।

चौथी की रीडर (पाठ्य पुस्तक) में 184 पेज की सामग्री दी गई है। इस सामग्री का मोटा-मोटा ब्यौरा इस प्रकार है:

1. प्राइस ऑफ गॉड (कविता)
2. क्वीन विक्टोरिया (बायोग्राफिकल स्केच)
3. द लायन एंड द हेयर
4. कैटल
5. द कमिंग ऑफ द यूरोपियन टू इंडिया (हिस्ट्री सीरीज़)
6. द पोल्यूशन ऑफ एयर (सेनीटेशन सीरीज़)
7. कलेक्शन ऑफ मोरल एफॉरिज़्म (नीति सूत्रों का संकलन)

8. चाइनीज़ एम्पायर
9. बैटल बिटवीन अलेक्ज़ेण्डर एंड पोरस
10. द ओल्ड मैन एंड हिज़ बुलॉक
11. सेटलमेंट ऑफ यूरोपियन (हिस्ट्री सीरीज़)
12. प्यूरिफिकेशन ऑफ एयर (सेनीटेशन सीरीज़)
13. गुड सीड (एग्रीकल्चर सीरीज़)
14. विंड, वेपर एंड रेन
15. द पनिशमेंट ऑफ चिल्ड्रेन
16. कॉइन एज़ ए मिडियम ऑफ एक्सचेंज
17. कलकत्ता, बॉम्बे एंड मद्रास
18. स्लीप
19. द फूड ऑफ प्लांट
20. क्वीन दुर्गावती
21. शुगरकेन
22. बंगाल (हिस्ट्री सीरीज़)
23. सेनीटेशन ऑफ टाउन एंड विलेजेस
24. प्रोटेक्शन ऑफ क्रॉप्स
25. द रेन बो
26. ट्रुथ (कहानी)
27. डिसीसेज़
28. एग्रीकल्चरल मशीन एंड इम्प्लीमेंट्स
29. द ताजमहल
30. द रिकगनीशन ऑफ द फॉल्स एंड ट्रू
31. लॉर्ड वेलेज़ली
32. द सन एंड द प्लेनेट
33. लॉर्ड विलियम बेर्टिक एंड लॉर्ड डलहौज़ी
34. द लॉ ऑफ लैंडलॉर्ड एंड टिनेंट
35. स्मॉलपॉक्स
36. स्टोरी ऑफ कोलंबस
37. एक्सीडेंट एंड हाऊ टू इनकाउंटर देम
38. कालीदास
39. अहिल्याबाई
40. हाऊ टू राइट लेटर्स
41. एग्ज़ामपल ऑफ लेटर्स
42. ब्रिटिश एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया
43. मित्रलाभ

(साढ़े पाँच आने की इस किताब में लगभग 70 पाठ थे। इनमें से मित्रलाभ हिन्दी में था। निरीक्षक टीम का मानना था कि हालाँकि इस प्रान्त के लोगों की भाषा में काफी वैविध्य है। इसलिए कोई एक ऐसी पाठ्य पुस्तक लिखी जाना सम्भव नहीं है जो इलाके की सभी भाषाओं और उनकी उपभाषाओं को बोलने वालों के लिए उपयुक्त हो।)

अब हम लड़कों की भूगोल की समझ देखना चाहते थे। कुछ स्कूलों में गाँव के प्लान का विस्तृत नक्शा होता है। यह वांछनीय है कि बच्चे ज़िले के नक्शे को पढ़ने से पहले अपने गाँव की प्रमुख सड़कों, गलियों, भवनों, तालाब आदि की अपने स्कूल से और घर से स्थिति को जाने, उन्हें इसका अन्दाज़ मिले। स्कूल जिस गाँव में स्थित है पहले उसका नक्शा कक्षा में दिखाया जाए। फिर गाँव से सम्बन्धित कुछ स्थानों के बीच की दूरियाँ जिन्हें बच्चे जानते हों के बारे में चर्चा की जाए। मसलन, आसपास के गाँव, मुख्य सड़क, ज़िला मुख्यालय आदि। नक्शों

की सच्चाई से रूबरू करवाने के लिए बच्चों द्वारा ज्ञात किसी दूरी को स्केल, कागज़ की मदद से नक्शे पर नपवाकर उन्हें दिखाना चाहिए।

इस तरह से क्रमशः आगे बढ़ने पर ज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़ते जाते हैं और ज़िले के बड़े गाँव, तहसीलें, पहाड़, नदियाँ, रास्ते, रेलवे लाइन आदि के बारे में सीखते जाते हैं। पाठ इस तरह चलता है:

सवाल - इस गाँव का नाम क्या है?
जवाब - बरेला।
सवाल - यह किस मार्ग पर स्थित है?
जवाब - जबलपुर-मण्डला सड़क मार्ग पर।
सवाल - सड़क किस दिशा से किस दिशा में जा रही है?
जवाब - उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर।
सवाल - यदि आप सड़क पर चलते हुए मण्डला की ओर चलते जाएँ तो, सबसे पहले कौन-सा गाँव मिलेगा?
जवाब - दोभी गाँव (इसे नक्शे पर भी दिखाना होगा)।
सवाल - दोभी गाँव कितना दूर है?
जवाब - तीन मील दूर।
सवाल - और, जबलपुर कितनी दूरी पर है?
जवाब - बारह मील।
सवाल - यहाँ और दोभी के बीच का रास्ता कहाँ से गुज़रता है?
जवाब - पहाड़ी से होकर गुज़रता है।
सवाल - यह पहाड़ी किसी पर्वत माला का हिस्सा है?
जवाब - सतपुड़ा पर्वत का।
सवाल - पहाड़ी किन ज़िलों की सीमा बनाती है?
जवाब - मण्डला और जबलपुर।
सवाल - दोभी किस ज़िले में है?
जवाब - लगभग मण्डला ज़िले की सीमा के भीतर।
सवाल - यदि आप जबलपुर की ओर सफर करते हो तो कौन-सी नदी को पार करोगे?
जवाब - गौर नदी।
सवाल - गौर नदी का पानी किस नदी में मिलता है?
जवाब - नर्मदा नदी में।

और पाठ इसी तरह आगे चलता रहता है।

**कुछ सवाल:**

– शाला निरीक्षण की पूर्व सूचना होने पर तैयारी में क्या फायदे मिलते हैं?

– उन दिनों भाषा, गणित और भूगोल शिक्षण के तरीकों और आजकल कक्षाओं में अपनाए जाने वाले तरीकों में कुछ साम्य या फर्क दिखाई देता है क्या?

## III

### नवाब सुल्तान जहाँ की पढ़ाई

अगला उदाहरण भोपाल रियासत की नवाब सुल्तान जहाँ बेगम के बचपन से है। सुल्तान जहाँ बेगम की पैदाइश सन् 1858 में हुई थी। उनकी पढ़ाई और ज़रूरी दक्षताओं के लिए घर पर

ही सारी व्यवस्थाएँ की गई थीं। सुल्तान *'गौहर-ए-इकबाल'* में शुरुआती पढ़ाई के बारे में संक्षेप में बताया है।

...मेरे जीवन के शुरुआती पाँच साल दादी (सिकन्दर बेगम) की परवरिश में गुज़रे। यह दौर बीतते-बीतते मेरी तालीम का खाका तैयार हो गया था। रिवाज़ के मुताबिक अल्लाह का आशीष पाने के लिए प्रार्थना की गई। मेरे लिए पढ़ाई का एक तयशुदा कार्यक्रम सुझाया गया।

पढ़ाई की इस दिनचर्या का एक हिस्सा सुबह पाँच बजे से दोपहर तक था।

5-6 खुली हवा में वर्जिश
6-7 सुबह का नाश्ता
8-10 कुरान की पढ़ाई
10-11 सिकन्दर बेगम के साथ नाश्ता
11-12 मनोरंजन
दोपहर 12 के बाद
12-1 हस्तलेखन का पाठ
1-3 इंग्लिश के पाठ
3-4 फारसी के पाठ
4-5 अंक गणित
5-5:30 पश्तो के पाठ और घेराबन्दी का अभ्यास (एक दिन छोड़कर)
5:30-6 घुड़सवारी
6-7 रात का खाना
8 सोने के लिए बिस्तर पर जाना

मेरी पढ़ाई के लिए जो शिक्षक मुकर्रर किए थे उनके नाम इस प्रकार हैं:

उर्दू की पढ़ाई - हाफिज़ सैयद मोहम्मद सुरती
कुरान का अनुवाद - मौलवी जमालुद्दीन
हस्तलेख - रज़ा अली शीरिन रक्म
इंग्लिश - मुंशी हुसैन खान
फारसी - मौलवी बुखारी
अंकगणित - गुरुजी पण्डित गनपत राय
घेराबन्दी - सैयद अमिर अली
घुड़सवारी - उस्ताद हकदाद खान
पश्तो - अखद साहिब

मेरी पढ़ाई, मेरे स्वास्थ्य और परवरिश की सारी व्यवस्था के सूत्र मेरी दादी के हाथों में थे। मैं हफ्ते में तीन शाम अपनी माँ के साथ गुज़ार पाती थी।

**कुछ सवाल:**

– राजपरिवार के बच्चों की शिक्षा और आम बच्चों की शिक्षा में कौन-कौन-से अन्तर दिखाई देते हैं?
– सुल्तान जहाँ, लड़की होने की वजह से उनकी पढ़ाई की व्यवस्था घर पर की गई थी, या राजपरिवारों, ज़मीदारों, मालगुज़ारों के लड़के-लड़कियाँ घर पर ही शिक्षा ग्रहण करते थे?
– बेगम उर्दू, पश्तो, फारसी, इंग्लिश आदि भाषा का इस्तेमाल कहाँ करती होंगी?
– कक्षा में बच्चों के साथ पढ़ना और अकेले पढ़ने के क्या फायदे-नुकसान होते होंगे?

# IV

## शिक्षा की चाहत

उपनिवेशकालीन भारत में एक ऐसी शिक्षा का विकास हो रहा था जिसका जनाधार बहुत संकुचित था और जिसमें समाज के बहुसंख्य वर्ग के लिए मुश्किल से ही कोई जगह थी।

बंगाल के ग्रामीण इलाकों में कमज़ोर तबकों के बीच शिक्षा सम्बन्धी समस्या दो किस्म की थीं। एक तो शिक्षा में कमज़ोर तबकों की हिस्सेदारी के प्रति उच्चतर तबकों द्वारा विरोध और दूसरे, अपने जीवन से शिक्षा के सन्दर्भहीन होने के कारण ग्रामीण कमज़ोर तबकों में इसके प्रति उदासीनता।

फिर भी स्कूलों में दी जा रही शिक्षा को पाने की चाहत इन ग्रामीणों के मन में थी। इस चाहत को दिखाने वाला एक अंश आगे दिया जा रहा है।

पादरी लाल बिहारी डे द्वारा लिखित *बेंगाल पेज़ेंट लाइफ* (बंगाल का किसान जीवन) में उस समय के बंगाल के किसान जीवन का व्यापक चित्र प्रस्तुत किया गया है। लाल बिहारी का जन्म 1824 में बर्दवान ज़िले के सोनापलासी गाँव में हुआ था। 1872 में उन्होंने *बंगाल पेज़ेंट लाइफ* पुस्तक लिखी। यह उनके बचपन के संस्मरणों के आधार पर लिखी गई थी।

लाल बिहारी अपनी किताब में बताते हैं - बर्दवान के कंचनपुर गाँव में दो पाठशालाएँ थीं। एक पाठशाला गरीब कायस्थ शिक्षक रामस्वरूप चलाता था। दूसरी एक ब्राह्मण पण्डित। आम तौर पर गरीब वर्ग अपने बच्चों को रामस्वरूप की पाठशाला में भेजा करते थे, जबकि उच्चतर वर्ग या जातियों के लड़के ब्राह्मण शिक्षक की पाठशाला में जाया करते।

बदन एक मेहनतकश रैयत था। वह अपने बेटे गोबिन को रामस्वरूप की पाठशाला में भेजना चाहता था। इसके लिए उसने अपनी माँ से सहमति लेनी चाही।

बदनः क्या यह अच्छा न होगा माँ कि गोबिन को अक्षर ज्ञान हो? मुझे तो चिट्ठी भी पढ़नी नहीं आती, न ही कबुलियत लिखना। यह बड़ी कमी है। मैं तो अपना नाम तक नहीं लिख सकता। अपनी अज्ञानता के कारण मैं नाम की जगह एक काट बना देता हूँ। मेरी आँखें हैं लेकिन मैं देख नहीं सकता। मैं हर धोखेबाज़ गुमाश्ते का शिकार बनता हूँ और हर अत्याचारी ज़मीदार का। कितना अच्छा हो यदि गोबिन लिखना-पढ़ना सीख जाए?

अलंगा (माँ): अरे बदन, लिखने-पढ़ने की बात भी मत कर। तुम्हारे बड़े भाई को पाठशाला भेजा था। तुम्हारे पिता ने मेरी इच्छा के खिलाफ भेजा था। और क्या हुआ? स्कूल जाने के एक साल बाद ही भगवान ने उसे हमसे छीन लिया था। पढ़ना-लिखना हमारे जैसे गरीबों के लिए नहीं है... मुझे डर लगता है कि ... अगर तुम गोबिन को स्कूल भेजोगे तो ... भगवान उसे भी हमसे छीन लेगा।

बदनः तो पढ़ने-लिखने वाले ब्राह्मण-कायस्थों के लड़के क्यों नहीं मर जाते?

अलंगा (माँ): पढ़ना-लिखना कायस्थों का काम है। इसलिए भगवान उनसे नाराज़ नहीं होते। लेकिन हमारा काम तो ज़मीन जोतना है और अगर हम इतना बड़ा सोचने लगें, पढ़ने की बात करने लगें तो भगवान ज़रूर ही हमसे नाराज़ हो जाएँगे। हम जन्म से ही ज़मीन जोतने वाले लोग हैं, और हमें सारा जीवन ज़मीन जोतना चाहिए। क्या तुम्हारे बुज़ुर्गों ने पढ़ना-लिखना सीखा था? तो, जो तुमने नहीं सीखा, वह बेटा क्यों सीखे?

**कुछ सवालः**

– क्या बदन का बेटा स्कूल पढ़ने गया होगा? इस बारे में आप क्या सोचते हैं?

## V

## दलितों का शालाओं में प्रवेश

1882 में भारतीय शिक्षा आयोग ने भारत में शिक्षा की समीक्षा करते हुए ब्रिटिश हुकूमत से कहा कि शासकीय सहायता प्राप्त शालाओं में बिना भेदभाव के सभी जाति के बच्चों को प्रवेश दिया जाए। यानी स्कूली शिक्षा प्राप्ति के मार्ग में दलित होने की वजह से बाधा नहीं आना चाहिए। ऊपर से देखने में ऐसा लगता था कि शासन के इरादे नेक हैं।

इस खण्ड में हम एक-दो उदाहरणों के माध्यम से दलितों के शालाओं में प्रवेश का सवर्ण हिन्दुओं द्वारा विरोध और इस मुद्दे पर ब्रिटिश अफसरों के रुख पर एक नज़र डालेंगे। सवर्ण हिन्दुओं द्वारा विरोध का एक उदाहरण मनमाड (ज़िला नासिक) से है।

यह वाकया 1884 का है। इसमें चर्च मिशन सोसायटी मालेगाँव के रेवरेंड अल्फ्रेड मेनवारिंग ने नासिक के शिक्षा विभाग को एक शिकायत सौंपी। इस शिकायत में कहा गया था कि मनमाड लोकल बोर्ड स्कूल में नवनियुक्त ब्राह्मण शिक्षक मिशनरी स्कूल के लड़कों को लोकल बोर्ड स्कूल की ओर मोड़ रहे हैं, जिसकी वजह से दोनों स्कूलों के बीच मधुर सम्बन्ध खत्म हो रहे हैं।

चर्च शासकीय सहायता से मनमाड में लड़कों के लिए एक मिशनरी स्कूल चला रही थी। इसलिए स्कूल में बच्चों की घटती संख्या स्कूल प्रबंधकों के लिए चिन्ता का सबब हो सकता था।

नासिक के डेप्यूटी एजुकेशन इंस्पेक्टर ने लोकल बोर्ड स्कूल का दौरा किया और अपनी रिपोर्ट में बताया कि नई स्कूल समिति बस शाला में कुछ सुधार कर रही है, पूर्व शिक्षक के कार्यकाल में जो नुकसान हुआ था उसे ठीक करने की कोशिश चल रही है। रिपोर्ट में बताया कि केवल दो लड़के मिशनरी स्कूल से लोकल बोर्ड स्कूल में आए हैं, 20 नहीं, जैसा कि रेवरेंड अपनी शिकायत में कह रहे हैं।

रिपोर्ट मिलने के बाद एजुकेशन

इंस्पेक्टर जेकब ने नए शिक्षक को चेताया कि वह मिशनरी स्कूल के साथ गलत तौर-तरीके न अपनाए। साथ ही, मेनवारिंग को बताया कि पालक अपने बच्चों को किस स्कूल में भेजना चाहते हैं इसके लिए वे स्वतंत्र हैं।

ऐसा लगा जैसे यह एक छोटा-सा विवाद था। लेकिन उसी दौरान मनमाड के 35 सवर्ण हिन्दुओं ने एक याचिका देकर लोकल बोर्ड स्कूल में नई इंग्लिश कक्षा शुरू करने की माँग की। जेकब महोदय ने इसके लिए अपनी अनुमति दे दी। इसकी वजह से लोकल बोर्ड स्कूल सीधे-सीधे मिशनरी स्कूल का प्रतिद्वन्द्वी बन गया। एक बार फिर मेनवारिंग ने अपनी आपत्ति व्यक्त की। मेनवारिंग के मुताबिक मनमाड की आबादी देखते हुए एक और इंग्लिश कक्षा की ज़रूरत नहीं है। एक ही इलाके में शासकीय सहायता प्राप्त दो संस्थाओं के काम करने से न केवल काम का दोहराव होता है बल्कि संसाधनों का भी अपव्यय होता है। जेकब ने मेनवारिंग की दलील से इत्तेफाक रखते हुए अनुमति को रद्द कर दिया।

सवर्ण हिन्दुओं ने एक बार फिर याचिका दी। इस बार उन्होंने अलग इंग्लिश कक्षा की माँग का प्रमुख कारण बताया कि मिशन स्कूल में ईसाइयत के निर्देश दलितों की शिक्षा को अनुमति देते हैं और सवर्ण हिन्दुओं के लड़कों को दलित लड़कों के साथ बैठकर पढ़ना पड़ता है, जो सवर्ण हिन्दुओं के लिए आपत्तिजनक है। प्रमुख याचिका कर्ता ने संकेत दिया कि वे और पास के विंचुर गाँव के प्रमुख ब्राह्मणजन ट्यूशन फीस के अलावा 15-20 रुपए प्रतिमाह दे रहे हैं ताकि नई इंग्लिश कक्षा का खर्च वहन किया जा सके।

याचिका से स्पष्ट था कि दलित बच्चों के साथ बैठकर पढ़ना प्रमुख आपत्ति थी। लेकिन जेकब मामले को एक दूसरे स्तर पर ले गए। शासकीय नीतियों के मुताबिक स्कूलों में दलितों के प्रवेश पर रोक नहीं लगाई जा सकती थी। उन्होंने मिशनरी स्कूल में ईसाइयत की शिक्षा को प्रमुख आपत्ति मानकर मेनवारिंग को बताया कि मिशन स्कूल में ईसाई धर्म की शिक्षा को रोका जाए तो सवर्ण हिन्दुओं को आपत्ति की वजह नहीं रह जाएगी और नई इंग्लिश कक्षा के लिए वाजिब कारण भी नहीं रहेगा। अन्यथा सवर्ण हिन्दुओं की माँग पर गौर करते हुए, नई इंग्लिश कक्षा की अनुमति दी जा सकती है।

मेनवारिंग ने इस सवाल को अन्य फोरम पर रखा। लेकिन मूल सवाल को लेकर अँग्रेज़ अफसरों का जो रुख सामने आ रहा था उसे देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था कि शासन दलितों की शिक्षा को प्रोत्साहन भी देना चाहता था लेकिन सामाजिक बदलावों के इस उद्देश्य पर धीरे-धीरे सम्हलकर आगे बढ़ना चाहता था। इसके लिए अफसर हालात के साथ समझौते कर रहे थे।

आखिरकार, यह कहा गया कि मनमाड का लोकल बोर्ड स्कूल नई इंग्लिश कक्षा शुरू कर सकता है। यदि

कक्षा में शासकीय नियमों के अनुसार दलित छात्रों को दाखिला नहीं दिया गया तो इस इंग्लिश कक्षा को निजी वित्तीय मदद से चलने वाली निजी कक्षा माना जाएगा।

इससे यह साफतौर पर समझा जा सकता है कि सवर्ण हिन्दु लड़कों के लिए एक वैकल्पिक इंग्लिश कक्षा उपलब्ध हो गई थी, जहाँ दलितों को प्रवेश नहीं दिया जाएगा। अतः इंग्लिश पढ़ने के इच्छुक दलित को मिशनरी स्कूल जाना पड़ेगा।

## बरामदे का उपयोग

दलित बच्चों को शालाओं में प्रवेश के विरोध का दूसरा उदाहरण दापोली (ज़िला रत्नागिरी, महाराष्ट्र) से है।

यह वाकया 1890 के दशक की शुरुआत का है। दापोली में नगर पालिका का प्रायमरी स्कूल चल रहा था और पहले से चल रहा मिशनरी प्रायमरी स्कूल लगभग उसी समय बन्द हुआ था। दापोली के दलित रिटायर्ड फौजियों ने नगर पालिका को एक याचिका सौंपी कि उनके दलित लड़कों को प्रायमरी स्कूल में प्रवेश दिया जाए। रिटायर्ड फौजियों के बड़े लड़कों को तो मिशनरी के स्थानीय सेकेंडरी स्कूल में दाखिला मिल गया था लेकिन छोटे लड़कों के लिए नगर पालिका स्कूल के सिवा दूसरा विकल्प नहीं था। यहाँ गौर तलब है कि ये फौजी सेना में निचले ओहदों पर काम करते हुए सेवानिवृत्त हुए थे।

नगर पालिका ने याचिका पर जवाब देते हुए कहा कि दलित बच्चों को प्रवेश नहीं दिया जा सकता, क्योंकि ऐसा करने पर सवर्ण हिन्दु बच्चे धार्मिक कारणों से स्कूल छोड़ देंगे। लेकिन यदि याचिकाकर्ता 20-25 दलित लड़के जुटा लेते हैं तो उनके लिए एक पृथक कक्षा और शिक्षक की व्यवस्था की जा सकती है।

नगर पालिका के इस प्रस्ताव से रिटायर्ड फौजी सहमत नहीं थे। उन्हें लगता था कि एक ही कक्षा में अलग-अलग दर्जे (स्टेंडर्ड) के बच्चे साथ होने से बच्चों को समुचित गुणवत्ता की शिक्षा नहीं मिलेगी।

माँग पर विचार न होते देखकर फौजियों ने याचिका रत्नागिरी के असिस्टेंट कलेक्टर को और बाद में कलेक्टर को सौंपी। कलेक्टर ने नगर पालिका को लिखा कि सेवानिवृत्त फौजियों के लड़कों को स्कूल के बरामदे में बैठाया जाए और लड़के पढ़ाई के निर्देश वहीं से प्राप्त करें।

कलेक्टर से निर्देश मिलने के बाद नगर पालिका ने निर्णय लिया कि स्कूल का वर्तमान भवन बच्चों की संख्या के लिहाज़ से पर्याप्त नहीं है, इसलिए स्कूल के बरामदे का आकार बढ़ाकर, वहाँ एक अन्य शिक्षक दलित लड़कों को पढ़ाएगा। साथ ही, नगर पालिका ने कहा की फंड की कमी के चलते इस फैसले की तामील तुरन्त नहीं हो सकती।

इसके बाद नगर पालिका ने अगले 13 महीनों का समय बरामदे का नक्शा बनाने, इंजीनियर से सेंक्शन करवाने में बिताया।

इसी सब के बीच कमीशनर के दापोली दौरे के दौरान फौजियों ने इस मामले को उनके सामने रखा। कमीशनर ने साफ शब्दों में नगर पालिका अध्यक्ष से कहा कि शासकीय 'ग्रांट इन एड' नियमों के मुताबिक नगर पालिका स्कूल सभी जाति के बच्चों को शाला में प्रवेश देने के लिए बाध्य है।

नगर पालिका ने मामले को और न उलझाते हुए निर्णय लिया कि विस्तृत न किए गए बरामदे में दलित लड़कों को बैठाकर, शिक्षक बच्चों के स्तर के मुताबिक उन्हें शिक्षा देगा।

आखिरकार, 1894 में स्कूल का बरामदा दलित लड़कों के लिए खोला गया। यह बरामदा धूप और बारिश के लिए एकदम खुला था। बरामदे की दीवार थोड़ी ऊँची होने के कारण लड़कों को कक्षा को देखने और सुनने में दिक्कत महसूस होती थी। साथ ही, बरामदे में अलग-अलग कक्षा स्तर के लड़के एकत्रित हो गए थे। इन सब को लेकर फौजी पालक नाखुश थे।

कमीशनर ने एक बार फिर मामले का संज्ञान लेते हुए शिक्षा सचिव से नगर पालिका प्रायमरी शाला, दापोली को मिलने वाली वित्तीय मदद बन्द करने की सिफारिश की।

डायरेक्टर ऑफ पब्लिक इंस्ट्रक्शन के.एम. चेटफील्ड ने नगर पालिका अध्यक्ष को आदेश दिए कि शाला की सामान्य कक्षाओं में दलित लड़कों को अन्य छात्रों से कुछ फीट की दूरी पर बैठाया जाए।

**कुछ सवालः**

- स्कूलों में दलित लड़कों के प्रवेश को लेकर याचिकाएँ दी जा रही थीं। लड़कियों की शिक्षा के लिए उन दिनों क्या व्यवस्था होती होगी?
- दलितों के शाला में प्रवेश को लेकर सवर्ण हिन्दुओं के विरोध के कारण क्या सिर्फ धार्मिक थे?
- दलितों द्वारा शिक्षा प्राप्ति की कोशिश क्यों हो रही थी?
- ब्रिटिश राज में क्या शिक्षा का रोज़गार और आर्थिक गतिशीलता से भी कोई सम्बन्ध था?

— — — — —

अन्तिम बात इस सामग्री के चयन को लेकर है। उन्नीसवीं सदी के समग्र शैक्षणिक परिदृश्य को दिखा पाना खासा मशक्कत भरा काम है। एक तरफ शिक्षा पारम्परिक ढाँचे से निकलकर एक नए ढाँचे में प्रवेश कर रही थी। दूसरी ओर, भारतीय समाज भी संक्रमणकाल से गुज़र रहा था। साथ ही, उपरोक्त सामग्री को पढ़ते हुए यह भी समझ में आ रहा था कि शिक्षा

की गुणवत्ता, शिक्षकों की ट्रेनिंग, टी.एल.एम. का उपयोग, समावेशी शिक्षा, सभी के लिए शिक्षा, बच्चों को परिचित परिवेश से दूरवर्ती परिवेश में ले जाना जैसी कई बातें सवा सौ साल पहले स्कूली शिक्षा में शामिल हो गईं थीं। लेकिन लड़कियों की शिक्षा एक कम प्राथमिकता वाला पहलू था।

समाज के ताने-बाने में से यह सामग्री मिलती गई जिसे चुनकर यहाँ पेश किया जा सका। उम्मीद है, उपरोक्त उदाहरणों को पढ़कर आपको भारत में उन्नीसवीं सदी के दौरान बच्चों को दी जा रही प्रायमरी शिक्षा, भारतीय जनमानस में शिक्षा के बढ़ते महत्व और शालाओं में प्रवेश के लिए हुए संघर्षों की मोटी-मोटी झलक तो ज़रूर मिली होगी।

---

**माधव केलकर:** संदर्भ पत्रिका से सम्बद्ध।
तिण्णै शाला का तमिल से हिन्दी अनुवाद सी.एन. सुब्रह्मण्यम ने किया है। सी.एन. सुब्रह्मण्यम एकलव्य के होशंगाबाद केन्द्र पर कार्यरत हैं।

*इस लेख में निम्न स्रोतों से सामग्री ली गई है।*

1. *एन चरित्तिरम - उ.वे. सामिनाथ अय्यर। प्रकाशकः सामिनाथ अय्यर लाइब्रेरी, चैन्नई।*
2. *रूरल स्कूल इन सेंट्रल प्रोविन्स, एच.शार्प। 1904*
3. *एन अकांउट ऑफ माय लाइफ (गौहर-ए-इकबाल) - नवाब सुल्तान जहाँ बेगम।*
4. *देशज शिक्षा औपनिवेशिक विरासत और जातीय विकल्प - पोरोमेश आचार्य, प्रकाशकः ग्रन्थ शिल्पी, हिन्दी संस्करण वर्ष 2000।*
5. *सिटिंग ऑन द स्कूल वरांडाः द आइडियोलॉजी एंड प्रेक्टिस ऑफ अनटचेब्ल एजुकेशनल प्रोटेस्ट इन लेट नाइंटीथ सेंचुरी वेस्टर्न इंडिया। फिलिप कॉन्स्टेबल, इंडियन इकोनॉमिक सोशियल हिस्ट्री रिव्यू, 2000 37: 383, सेज पब्लिशर्स।*